...त्र का ...
...काश किया।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा से सम्पन्न कला-कार थे। एक ही व्यक्ति में इन दोनों प्रतिभाओं के दर्शन विरल होते हैं। या तो कोई व्यक्ति शास्त्रों का ज्ञाता होता है या फिर साहित्य का रचयिता। किन्तु दोनों गुण जिस व्यक्ति में विद्यमान होते हैं, वही श्रेष्ठ साहित्यकार माना जाता है। सौभाग्य से डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी को ये दोनों प्राप्त हुए। आधुनिक हिन्दी साहित्य में इस दृष्टि से उनके समकक्ष केवल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आते हैं। वे भी सिद्धान्तों के नियामक और साहित्य स्रष्टा दोनों थे। यही विशेषता द्विवेदी जी में रही। 'साहित्य का साथी' तथा 'साहित्य का मर्म' यदि उनकी आलोचना-पद्धति के निदर्शक बने तो 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचन्द्र लेख' 'पुनर्नवा', 'अशोक के फूल', 'कुटज' आदि ग्रन्थ उनके श्रेष्ठ रचनाकार होने के प्रमाण हैं।

आचार्य शुक्ल ने अपनी प्रतिभा, चिन्तन और पांडित्य द्वारा हिन्दी-आलोचना

के जिस भव्य पथ का निर्माण किया था, उसे और अधिक प्रशस्त बनाने
द्विवेदी जी ने किया। उनके सिद्धान्त और मान्यताएँ शुक्ल जी के सिद्धान्तों
अपितु उन्होंने शुक्ल जी द्वारा अधूरे छोड़े गये कार्य को पूरा किया। हिन्दी
को उन्होंने एक नई उदार और वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की। डॉ० मातृगुप्त
लिखा है, "शुक्ल जी ने यदि हिन्दी साहित्य को उसका इतिहास दिया है, तो
ने सचमुच उस साहित्य की भूमिका प्रस्तुत की है और इस तरह उनके
को पूरा किया है। वस्तुतः ये दोनों व्यक्तित्व एक-दूसरे के पूरक हैं, प्रतिद्वन्द्वी

डॉ० बच्चनसिंह ने आचार्य द्विवेदी की 'हिन्दी साहित्य की भूमिका'
'उनके सिद्धान्तों की बुनियादी पुस्तक' कहा है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन्
ई० में हुआ। इसके एक वर्ष पश्चात् 'कबीर' का प्रकाशन हुआ। 'सूर साहित्य'
ही सन् १९३४ ई० में प्रकाशित हो चुकी थी। इन पुस्तकों में सम्पूर्ण हिन्दी-
ध्यान आकर्षित किया। 'सूर साहित्य' में भावुकता का रंग कुछ प्रगाढ़ हो
किन्तु शेष दोनों पुस्तकें द्विवेदी जी के विचारों की परिपक्वता की द्योतक हैं।
मानवतावादी दृष्टिकोण तथा ऐतिहासिक पद्धति इनमें उभर कर सामने
उन्होंने बताया कि किसी साहित्यकार को व्यापक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में
चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि आलोचक को अपनी सांस्कृतिक विरा
पूर्ण ज्ञान हो। यद्यपि 'कबीर' के प्रकाशन से पूर्व डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
साहित्य सम्बन्धी कुछ लेख हिन्दी में प्रकाशित हो चुके थे और अंग्रेजी में 'निर्गु
ऑव हिन्दी पोयट्री' नामक ग्रन्थ भी छप चुका था, परन्तु अंग्रेजी में होने
वह सर्वजनग्राह्य न था। डॉ० बड़थ्वाल में वह मानवतावादी उदार दृष्टिकोण
था जो द्विवेदी जी ने भारतीय वाङ्मय के गहन अध्ययन-मनन, युगीन समस्या
सूक्ष्म चिन्तन और शांति-निकेतन के प्रवास काल में कवीन्द्र-रवीन्द्र तथा क्षि
सेन के सान्निध्य से प्राप्त किया था। इसीलिए द्विवेदी जी का समीक्षक रू
गौरवशाली बना। शान्ति-निकेतन के 'विश्वभारती' जैसे संस्कृत-पीठ का ही
है कि वे साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका में रखकर देखने को प्रवृत्त हुए हैं।

आचार्य शुक्ल में उस तटस्थता और उदारता की कमी थी, जो एक
के लिए आवश्यक है। शुक्ल जी नैतिकता और लोकमंगल के समर्थक थे और
लिए इन भावनाओं को व्यक्त करने वाले कवि तुलसी पर उनकी श्रद्धा सर्वाधिक
निर्गुण धारा के कवियों पर उन्होंने उदारतापूर्वक विचार नहीं किया। हिन्दी
के आदि काल के सिद्धों, नाथों और जैनों की कृतियों को उन्होंने साम्प्रदायिक
उपदेश तथा शुष्क ज्ञान कहकर उपेक्षित बना दिया। इन उपेक्षित अंशों का
जी सहृदयतापूर्वक संस्पर्श किया। द्विवेदी ने कहा कि धार्मिक रचनाएँ साहित्य
परिधि से निर्वासित नहीं की जा सकतीं क्योंकि उनमें भी काव्यत्व रहता है।
धार्मिकता के नाम पर ही किसी कृति को साहित्य से बहिष्कृत किया जाए
तुलसी का रामचरितमानस और जायसी का पद्मावत भी धार्मिक कृतियाँ
कारण साहित्य-सीमा में प्रविष्ट न हो सकेंगे। इस मत को प्रस्तुत करते हुए
द्वारा उपेक्षित हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंश पर द्विवेदी जी ने सहानुभूति
विचार किया। उनकी यह विशेषता एक सफल समीक्षक होने का प्रमाण है।

आधार पर उन्होंने कबीर के काव्य की विशेषताओं का उद्घाटन किया, सिद्धों, नाथों और जैनों के साहित्य का विवेचन किया। उनके 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'कबीर', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', 'नाथ सम्प्रदाय', 'मध्यकालीन धर्म-साधना' आदि ग्रन्थ इस दृष्टि से देखे जा सकते हैं।

कबीर का मूल्यांकन द्विवेदी जी ने अनेक नई दृष्टियों से किया। उन्होंने बताया कि कबीर का महत्व सबसे अधिक इस बात से है क्योंकि उन्होंने मनुष्य-मनुष्य के बीच रागात्मक सम्बन्ध का उद्घाटन किया है। कबीर के भाषागत वैशिष्ट्य पर भी सर्वप्रथम उन्हीं की दृष्टि गई। वे लिखते हैं—"भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के तानाशाह थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है; उसे उसी रूप में कहलवा लिया—बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है।"

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य का मर्म मानवतावाद को माना है। उनका कहना है—"मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो जाल मनुष्य को दुर्गति, दीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।" अतएव स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि मानवतावादी है। उनका मानवतावाद उपनिषदों से प्रभावित है, उसमें मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं माना जाता। इसका प्रतिपादन 'साहित्य का मर्म' में बड़े विशद् और वैज्ञानिक रूप में हुआ है। इसी मानवतावाद की अभिव्यक्ति 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' और 'कबीर' में इतिहास का आश्रय लेकर हुई है तो 'साहित्य का मर्म' में विविध ज्ञान-विज्ञान के माध्यम से हुई है। द्विवेदी जी ने बताया कि साहित्य के मर्म तक पहुँचने के लिये समीक्षक को विज्ञान, राजनीति, अर्थनीति आदि सभी से सहायता लेनी ही पड़ेगी। भारत के लिये यह नई बात नहीं है। यहाँ पर काव्यशास्त्र को विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों ने आदिकाल से ही प्रभावित और लाभान्वित किया है।

द्विवेदी जी साहित्यकार का लक्ष्य मनुष्य का हित-साधन करना मानते हैं और 'कला-कला के लिए' के सिद्धान्त के समर्थक नहीं हैं। उनका इतिहासकार रूप उनके समीक्षक रूप में इस प्रकार घुल-मिल गया है कि उन्हें परस्पर पृथक् करके अध्ययन करना सम्भव नहीं है। इसीलिए उनके आलोचनात्मक साहित्य को मोटे रूप से यदि हम दो भागों में बाँटे—१. इतिहास सम्बन्धी तथा २. समीक्षा सम्बन्धी, तो ये दोनों रूप हमें परस्पर घुले-मिले दिखाई देंगे। अभी तक हिन्दी साहित्य के भक्तिकाव्य के सम्बन्ध में शुक्लजी द्वारा निर्दिष्ट मान्यता ही चल रही थी कि मुसलमानों के सामने पराजित होने पर हिन्दू जाति के निराश और भग्न हृदय के सम्मुख ईश्वर की शरण में जाने के अतिरिक्त कोई उपाय न था, इसीलिये इस साहित्य में भक्ति भावना विद्यमान है। द्विवेदी जी ने हिन्दी के भक्ति साहित्य को हतदर्प पराजित हिन्दू-जाति की सम्पत्ति नहीं माना। उनका कहना है—"अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का रूप बाहर आना वैसा ही होता जैसा आज।" द्विवेदी जी ने इसे एक स्वाभाविक सांस्कृतिक विकास का परिणाम बताया है। उन्होंने इसकी जड़ें लोक-चिन्तन में ढूँढ़ी हैं। उनकी यह धारणा पूर्ववर्ती विद्वानों में सर्वथा भिन्न है, मौलिक

द्विवेदी जी की समीक्षा के क्षेत्र में एक अन्य महत्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने हिन्दी के काव्य-रूप के विकास की ओर ध्यान दिया। यह कार्य उनसे पूर्व अन्य किसी आलोचकों ने नहीं किया। हिन्दी साहित्य के साथ उन्होंने अन्य प्रान्तों के साहित्य का सम्बन्ध जोड़कर काव्य रूपों में तुलनात्मक विवेचन की दिशा में भी कार्य किया है।

द्विवेदी जी की आलोचना शैली के अनेक रूप मिलते हैं। विवेचनापूर्ण व्याख्यात्मक शैली में उन्होंने जो आलोचनाएँ लिखी उनमें हैं। विषय-प्रतिपादन के लिए उद्धरण दिये हैं। अपने गहन अध्ययन द्वारा विषय का समर्थन करने के लिए उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। उनकी आलोचना-शैली का दूसरा रूप भावात्मक है, जिसमें किसी कवि की विशेषताओं की प्रशंसा की है। मध्ययुगीन साहित्य और संस्कृति द्विवेदी जी का प्रिय क्षेत्र है। उन्होंने सांस्कृतिक गतिविधि, लोक-जीवन आदि के बीच से साहित्य का परीक्षण करने की जिस वैज्ञानिक पद्धति को जन्म दिया, उसके लिये हिन्दी समीक्षा उनकी चिर-ऋणी रहेगी। एक आलोचक ने ठीक ही लिखा है कि—"ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समीक्षा पद्धति का आदर्श रूप पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचनाओं में प्रस्फुटित हुआ है।"